माना जायगा तो भिन्नता अर्थ भी सामर्थ्यगम्य होगा ही। अंतर इतना ही है कि सादृश्यवादी 'विशेष' अर्थ को सामर्थ्यगम्य मानता है तथा भेदवादी 'सादृश्य' अर्थ को।

अब देखना यह है कि पाणिनि के सूत्रों में जिस 'प्रकार' शब्द का प्रयोग हुआ है वह प्रधानतः किस अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहा है। संबद्ध प्रयोगों की दृष्टि से 'सादृश्य' अर्थ को प्रधान माना जाय या 'भेद' अर्थ को। इस दृष्टि से पहले हम पाणिनि के इन चार सूत्रों के अभिप्राय तथा उदाहरण एवं वृत्तिकारों तथा व्याख्याताओं की संमतियाँ प्रस्तुत करते हैं :

पहला सूत्र है—'प्रकार वचने थाल्'[1] जिसका अर्थ है प्रकार अर्थ के द्योतन के लिये'। 'किम' सर्वनाम तथा 'बहु' शब्द से 'थाल' प्रत्यय होता है ; जैसे-यथा, तथा, सर्वथा इत्यादि।

दूसरा सूत्र है 'प्रकार वचने जातीयर्'[2]। इसका अभिप्राय है 'प्रकार' को कहने के लिये प्रातिपदिक शब्दों से 'जातीयर्' प्रत्यय होता है, यथा 'मृदु जातीयः, पटुजातीयः' इत्यादि।

तीसरा सूत्र है—स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्'[3] अर्थात् गणपाठ के स्थूलादिगण में पठित 'स्थूल' आदि शब्दों से 'प्रकार' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये 'कन्' प्रत्यय संयुक्त हुआ करता है। जैसे 'स्थूलकः' 'अणुकः' 'माषकः' 'चंचत्कः' बृहत्कः इत्यादि।

प्रथम दो सूत्रों में 'प्रकार' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए काशिका के इस अध्याय के लेखक जयादित्य ने लिखा है 'सामान्यस्य विशेषो भेदकः प्रकारः'[4] अर्थात् सामान्य का भेद करनेवाला सामान्य से भिन्नता प्रस्तुत करनेवाला जो विशेष है वही यहाँ प्रकार शब्द का अभिप्राय है। तीसरे सूत्र में भी 'प्रकार' शब्द से जयादित्य को 'भेद' ही अभिप्रेत है। इसीलिये उन्होंने यहाँ भी कहा है कि 'प्रकारो विशेषः'[5] अर्थात् 'प्रकार का अर्थ है विशेष'। जयादित्य के साथ साथ जैनेंद्र

१. अष्टाध्यायी ( ५।३।२३ )
२. वही ( ५।३।६९ )
३. वही ( ५।४।३ )
४. काशिका ( ५।३।२३, ६९ )

व्याकरण[१], शाकटायन व्याकरण[२], सरस्वती कंठाभरण[३] तथा हेम व्याकरण[४] के आचार्यों ने भी इन उपर्युक्त प्रसंगों में 'प्रकार' का अर्थभेद ही माना है।

प्रथम दो सूत्रों की व्याख्या पतंजलि ने नहीं की है। तीसरा सूत्र महाभाष्य में मिलता तो है पर पतंजलि ने सूत्रस्थ 'प्रकार' शब्द के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। परंतु 'यथा असादृश्ये' सूत्र की व्याख्या के प्रसंग में पतंजलि ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'प्रकार वचने थाल्' इस सूत्र में 'प्रकार' शब्द का अर्थ 'सादृश्य' है।[५]

इसी तरह 'प्रकारे गुणवचनस्य'[६] इस सूत्र की व्याख्या के प्रसंग में पतंजलि तो नहीं, पर पतंजलि के उत्तराधिकारी व्याख्याता कैयट ने स्पष्ट कहा है 'प्रकार वचने जातीयर्' इत्यत्र सादृश्यं प्रकारः केषांचिन्मते गृह्यते। अन्येषां तु भेदः प्रकारः[७], अर्थात् 'प्रकार वचने जातीयर्' इस सूत्र में 'प्रकार' शब्द का अर्थ कुछ लोगों के मत से 'सादृश्य' है परंतु दूसरों के विचार में 'भेद' अर्थ है। यहाँ सादृश्य अर्थवाला मत संभवतः पतंजलि तथा उनके अनुयायियों का है। क्योंकि ये लोग सर्वत्र 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य करते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में यह स्पष्ट कहा है कि सर्वत्र प्रकार शब्द के अर्थ के विषय में दो प्रकार का दृष्टिकोण मिलता[८] है जबकि कैयट ने उस स्थिति का संकेत केवल एक सूत्र के विषय में किया है।

ऊपर कैयट ने जिन दो मतों की ओर संकेत किया है उनका स्पष्टीकरण करते हुए नागेश[९] ने कहा है कि 'सादृश्य अर्थ वामन आदि का है तथा'

१. वही (५।४।३)
२. द्र० जैनेंद्र व्याकरण महावृत्ति (४।२।८६)
३. द्र० हृदयहारिणी वृत्ति (४।३।३५, ४५)
४. द्र० हैमव्याकरण लघुप्रक्रियावृत्ति (७।२।१०२)
५. यथेत्यपगम् प्रकारवचने थाल्। स च सादृश्ये वर्तते महाभाष्य (२।१।७)
६. अष्टाध्यायी (८।१।१२)
७. प्रदीप महाभाष्य (८।१।१२)
८. सादृश्यमेव सर्वत्र प्रकार कैश्चिदिष्यते।
भेदेपि तु प्रकाराख्या कैश्चिदभ्युपगम्यते॥
वाक्यपदीय, प्रकीर्णकांड (श्लोकसंख्या ६१८)
९. केषांचिन्मतेनेति—वामनादीनामित्यर्थः। अन्येषान्त्विति—जयादि-न्यादीनाम्।
—उद्योतटीका। महाभाष्य (८।१।१२)

भेद अर्थ जयादित्य आदि का है। ऐतिहासिक की दृष्टि में लगभग यह निश्चित हो चुका है कि काशिका के प्रथम पाँच अध्यायों के लेखक जयादित्य हैं तथा अंतिम तीन अध्यायों के लेखक वामन[1] हैं। ऊपर जिन सूत्रों को प्रस्तुत किया गया है वे सब पंचम अध्याय के हैं जिनमें जयादित्य ने सर्वत्र 'भेद' अर्थ किया है। वामन चूँकि अंतिम तीन अध्यायों के लेखक हैं, जिनमें अष्टम अध्याय में 'प्रकारे गुणवचनस्य' सूत्र आता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। इस सूत्र की व्याख्या में 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' स्वीकार किया गया है। परंतु पाँचवें अध्याय के 'प्रकार वचने जातीय[3]' सूत्र की व्याख्या जयादित्य ने लिखी है न कि वामन ने। इसलिये इस सूत्र की व्याख्या में वामन के द्वारा 'प्रकार' शब्द का 'सादृश्य' अर्थ किया गया है। इस तरह की बात कुछ असंगत सी अवश्य प्रतीत हो सकती है पर अष्टम अध्याय के 'प्रकारे गुणवचनस्य'[2] सूत्र की व्याख्या में वामन 'प्रकार' का सादृश्य अर्थ करते हुए, सादृश्य द्योतनार्थ गुणवाचक शब्दों से, विकल्प के रूप में, जातीय' प्रत्यय की स्थिति भी स्वीकार करता[4] है। इससे स्पष्ट है कि इस व्याख्याकार (वामन) को 'प्रकार वचने जातीय[5]' इस सूत्र में 'प्रकार' का 'सादृश्य' अर्थ ही अभिमत है। पदमंजरीकार हरदत्त मिश्र ने वामन की इस स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए यह कहा है कि वामन को यहाँ प्रकार के दोनों—सादृश्य तथा भेद—अर्थ अभिप्रेत हैं[6]।

तीसरे सूत्र 'स्थूलादिभ्यः प्रकार वचने कन्'[7] के प्रकार' के विषय में, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भाष्यकार पतंजलि तो मौन हैं परंतु उनके व्याख्याकार कैयट ने, इसी सूत्र पर लिखित कात्यायन की वार्तिक 'चंचद् बृहतोरूपसंख्यानम्' से निष्पन्न होने वाले 'चचत्क' तथा 'बृहत्क' शब्दों के अर्थ पर विचार करते हुए स्पष्ट कहा है कि 'कन्' प्रत्यय सादृश्य का द्योतक[8] है। कैयट के कथन का

१. द्र० संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भा० १-पं० युधिष्ठिर मीमांसक (पृ० ३[illegible])
२. अष्टाध्यायी (८।१।१२)
३. वही (५।३।६९)
४. काशिका (८।१।१२)
५. अष्टाध्यायी (५।३।६९)
६. पदमंजरी (५।३।६९)
७. अष्टाध्यायी (५।४।३)
८. चंचत्कः सादृश्यस्य द्योतकः कन् प्रत्ययः।—प्रदीप महाभाष्य (५।४।३)।
९ (६६-३)

स्पष्टीकरण करते हुए नागेश लिखता है कि इस सूत्र में 'प्रकार' शब्द का अभिप्राय 'सादृश्य'[1] है।

यहाँ कैय्यट 'चंचत्क' तथा 'बृहत्क' शब्दों के अर्थ के विषय में कहता है कि गतिशील या चंचल न होते हुए भी मणि इसलिये 'चंचत्क' शब्द का अभिधेय बनता है कि उसमें से निरंतर ज्योति की किरणें विकीर्ण होती रहती हैं इसलिये वह गतिशील या चंचल सा प्रतीत होता है तथा इसी प्रकार बड़ा न होते हुए भी, निरंतर प्रकाशित एवं दूर तक प्रत्यवभासित होते रहने के कारण एक विशेष मणि ही 'बृहत्क' शब्द का वाच्य बनता है क्योंकि वह बड़े शरीरवाला प्रतीत होता है।

कैय्यट से बहुत पूर्व भर्तृहरि[3] ने अपने प्रकीर्ण कांड के अंत में 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य है इस अपने अभीष्ट मत की पुष्टि में 'चंचत्क' शब्द के तीन - मणि, मंडूक तथा खद्योत अर्थों तथा 'बृहत्क' शब्द के एक मणि अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है तथा यह बताया है कि मणि, जिसमें से प्रभा की किरणें निरंतर स्फुरित हो रही हैं, मंडूक, जो एक स्थान पर स्थित होकर भी श्वास के भरने तथा निकालने से पेट को फुलाता तथा घटाता रहता है, तथा खद्योत, जो एक क्षण के लिये अपनी जगमगाहट को विकीर्ण करता है तो दूसरे क्षण उसे वह अपने अंदर निगीर्ण कर लेता है, 'चंचत्' से उपमित हुआ करते हैं। इसी तरह 'बृहत्क' शब्द का अर्थ मणि होता है जो छोटा होता हुआ भी विस्तृत रश्मिजाल को प्रसारित करता रहता है और इसलिये बड़े के समान प्रतीत होता है।

काशिका के व्याख्याकार हरदत्त मिश्र ने इस सूत्र की व्याख्या में, जयादित्य के अभिमत सिद्धांत 'प्रकारो विशेषः' की व्याख्या करने के उपरांत संभवतः

१. सूत्रे प्रकार शब्देन सादृश्य मुच्यते। —उद्योत महाभाष्य ( वही )

२. अचंचन्नपि यश्चंचन्निव लक्ष्यते स चंचत्को मणिः स्पन्दमान प्रभत्वात्। अबृहन्नपि बृहन्निव प्रसृतप्रभत्वात् यो दृश्यते स बृहत्कः। —प्रदीप, महाभाष्य ( वही )।

३. चंचत्प्रकारश्चंचत्क बृहत्क इतिचापरे।
मणिमण्डूक खद्योतान् सादृश्येन प्रचक्षते॥
तत्रोन्मेषनिमेषाभ्यां खद्योत उपमीयते।
श्वासप्रबन्धैर्मण्डूक स्पन्दमानप्रभो मणिः॥
—वाक्य पदीय, प्रकीर्ण कांड ( श्लोक संख्या ६११–१६ )।

भर्तृहरि तथा कैय्यट आदि की ओर संकेत करते हुए लिखता है कि कुछ विद्वानों के अनुसार इस सूत्र में 'सादृश्य' अर्थ में 'कन्' प्रत्यय का विधान किया गया है[1]। यों हरदत्त मिश्र का विचार है कि सूत्र में 'प्रकार' का 'सादृश्य' और 'भेद' दोनों ही अर्थ अभिप्रेत हैं तथा कन्प्रत्ययांत जो शब्द जिस अर्थ 'सादृश्य' या 'भेद' को कहता है, उससे उसी अर्थ में इस 'कन्' प्रत्यय की स्थिति को स्वीकार किया जाय। वृत्तिकार जयादित्य ने केवल 'उपलक्षण' की दृष्टि से इन दोनों अर्थों को न कहकर केवल एक अर्थ 'भेद' को ही कहा है[2]। पर नागेश ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जयादित्य की दृष्टि में 'प्रकार' का अर्थ केवल 'भेद' या 'विशेष ही है[3]।

भाषावृत्ति के लेखक पुरुषोत्तमदेव पंचम अध्याय के इन तीन सूत्रों में केवल एक सूत्र—'प्रकार वचने थाल्'—की व्याख्या में स्पष्टतः 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' करता है[4]। पर उससे अन्य दोनों सूत्रों में विद्यमान 'प्रकार' शब्द के अर्थ के विषय में उसकी स्थिति का ज्ञान हो जाता है क्योंकि इन तीनों सूत्रों का विषय एक ही है।

दुर्घटवृत्तिकार शरणदेव ने भी 'प्रकार वचने थाल्' के प्रकरण में आनेवाले 'इदमस्थमुः' सूत्र पर 'इत्थम्भूत' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में जो विवाद[5] उठाया है उससे यह निश्चित हो जाता है कि वह भी इन तीन सूत्रों में 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' ही मानता है।

सिद्धांत कौमुदी के लेखक भट्टोजी दीक्षित ने विवाद के विषयभूत इन तीनों सूत्रों के प्रकार शब्द के अर्थ के विषय में कहीं कुछ भी नहीं कहा है। पर उनके टीकाकारों ने इन सूत्रों में प्रकार का अर्थभेद किया है।

इस तरह 'प्रकार' शब्दवाले पहले तीन सूत्रों के 'प्रकार' शब्द के विषय में दो तरह के मत स्पष्टतः मिलते हैं। 'सादृश्य' अर्थ माननेवालों में पतंजलि,

१. अपर आह – सादृश्ये अत्र कन्। अचंचन्नपि यश्चंचन्निव लक्ष्यते स्पन्दमानप्रभत्वात् स चंचत्को मणिः। —पदमंजरी (५।४।३)।
२. प्रकारो भेदः सादृश्यं च। उभयत्रापि यथाभिधानं कन् भवति। वृत्तौ तु प्रकार इत्युपलक्षणम्।—पदमंजरी (वही)।
३. द्र० अन्येषांत्विति - जयादित्यादीनाम्।—उद्योत, महाभाष्य (८।१।१२)।
४. सादृश्ये वृत्तिभ्यस्थाल् स्यात्। तेन प्रकारेण तथा।—भाषावृत्ति (५।३।२३)।
५. इमम् प्रकारमापन्न 'इत्थम्भूत' इति। प्रकारश्च सादृश्यम्। तत्र तृतीया युक्ता।—दुर्घटवृत्ति (५।३।२४)।

भर्तृहरि, वामन, कैयट, नागेश, पुरुषोत्तमदेव तथा शरणदेव हैं एवं 'भेद' अर्थ माननेवाले विद्वानों में जयादित्य, देवनंदी, शाकटायन, भोज, तथा हेमचंद्र इत्यादि हैं।

'प्रकार' शब्दवाला अंतिम सूत्र है 'प्रकारे गुणवचनस्य'[1] जिसका अभिप्राय है 'प्रकार में वर्तमान गुणवाचक शब्दों का दो बार प्रयोग किया जाना चाहिए'। जैसे 'पटुपटुः', 'पंडितपंडितः' इत्यादि। काशिका में इस सूत्र के व्याख्याकार वामन ने 'सादृश्य' अर्थ को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'परिपूर्ण' गुणवाले व्यक्ति से न्यून गुणवाले व्यक्ति की जब तुलना की जाती है तब इस प्रकार का द्विर्वचनात्मक प्रयोग किया जाता[2] है। जब सीधे यह कहना हो कि 'देवदत्त चतुर है' तब यही कहा जायगा कि 'पटुर्देवदत्तः'। यहाँ 'पटु' शब्द का द्वित्व नहीं किया जाता'।[3]

यहाँ भी पतंजलि ने 'प्रकार' शब्द के अर्थ के विषय में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा—शायद कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। पर 'गुणवचनस्य' इस पद का जो प्रत्युदाहरण[4]—'अग्निर्माणवकः (बालक अग्नि के समान है) तथा 'गौर्वाहीकः' (वाहीक गौ के समान है)—पतंजलि ने दिया है उससे सर्वथा स्पष्ट है कि वे निश्चित ही 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य मानते हैं।

इस अंतिम सूत्र पर हमें जयादित्य के विचारों का पता नहीं लगता क्योंकि काशिका में इस सूत्र की व्याख्या वामन द्वारा की गई है जो सादृश्य पक्ष के माननेवाले हैं। भेदवादी कोई दूसरा व्याख्याकार पाणिनीय संप्रदाय में नहीं दिखाई देता। इसलिये इस सूत्र पर हमें केवल सादृश्यपरक व्याख्या ही देखने को मिलती है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि जैनेंद्र, शाकटायन तथा हेमव्याकरण के प्रतिष्ठित विद्वानों ने भी, जो ऊपर के तीन सूत्रों में प्रकार का अर्थ 'भेद' करते रहे हैं, इस सूत्र[5] में विद्यमान 'प्रकार' शब्द का 'सादृश्य' अर्थ ही माना है।

१. अष्टाध्यायी (८।१।१२)
२. परिपूर्णगुणेन न्यून गुणस्योपमाने सति एवं प्रयुज्यते।—काशिका (८।१।१२)
३. प्रकारे इति किम्-पटुर्देवदत्तः।—काशिका (वही)।
४. महाभाष्य (८।१।१२) तथा द्र०—गौर्वाहीक इति द्वित्वे सादृश्यमप्रयुदाहृतम्। —वाक्यपदीय वृत्तिसमुद्देश (१२४)।
५. द्र० प्रकारे गुणोक्तेः—प्रकारः सादृश्यमिह गृह्यते।—जैनेंद्र-व्याकरण—महावृत्ति (५।२।१०)।

प्रसंगतः यहाँ एक बात और निवेदन कर दूँ कि इन चारों सूत्रों से निष्पन्न होनेवाले प्रयोगों में एक विशेष बात यह है कि प्रथम सूत्र--'प्रकारवचने थाल्'—से सिद्ध होनेवाले 'यथा', 'तथा' इत्यादि शब्द केवल 'प्रकार' या 'प्रकारता धर्म' को कहते हैं। भले ही 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' या 'भेद' कुछ भी किया जाय। दूसरी ओर शेष तीन सूत्रों से विनिर्मित—जातीयर् प्रत्ययान्त, कन् प्रत्ययान्त तथा गुणवाचक शब्दों के द्विवचनात्मक प्रयोग केवल 'प्रकार' या प्रकारता धर्म को न कहकर उस 'प्रकार' से विशिष्ट 'प्रकारवान्' या प्रकारता-धर्म से युक्त धर्मी' को कहा करते हैं। उदाहरण के लिये यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः' इस वाक्य में 'यथा' और 'तथा' शब्द केवल 'प्रकार' का ही ज्ञान करा पाते हैं। परंतु दूसरी तरफ 'पटुजातीयः', स्थूलकः या 'चंचत्कः' तथा 'पटुपटुः' 'पण्डित पण्डितः' ये प्रयोग सदा ही 'प्रकारवान्' को कहते हैं केवल धर्म को न कहकर तद्विशिष्ट व्यक्ति को[1] कहते हैं।

इसलिये यदि 'प्रकार वचने थाल्' में 'प्रकार' का अर्थ 'प्रकार धर्म' है तो अन्य सूत्रों में उसका अर्थ है 'प्रकारवान् व्यक्ति' या 'धर्मी'।

अब तक 'प्रकार' शब्द के विषय में विभिन्न व्याख्याताओं के विभिन्न मतों का उल्लेख किया गया। अब यह विचारणीय है कि इन सूत्रों के उदाहरणभूत शब्दों से 'सादृश्य' अर्थ की अभिव्यक्ति होती है या 'भेद' अर्थ की।

जहाँ तक प्रथम सूत्र का प्रश्न है 'थाल्' प्रत्ययांत 'यथा' और 'तथा' शब्द 'यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्त जैसे वाक्यों में देवदत्तः' तथा यज्ञदत्त की समानता या 'सादृश्य' को अभिव्यक्त करते हैं। भेदवादी विद्वानों के अनुसार इस वाक्य का अर्थ होगा—यज्ञदत्त सामान्य व्यक्ति नहीं है, अपितु जिन विशिष्ट गुणों से युक्त देवदत्त है उन्हीं गुणों से युक्त यज्ञदत्त भी है। अतः वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न है। यह ठीक है कि यहाँ 'सादृश्य' तथा 'वैशिष्ट्य' दोनों ही अर्थ अभिव्यक्त होते हैं पर वक्ता की विवक्षा यही होती है कि देवदत्त तथा यज्ञदत्त में सादृश्य है। वह यह नहीं

१. द्र० (क) प्रकार वचनः कश्चित् प्रकार वति संस्थितः।
प्रकारमात्रे वर्तित्वा कश्चित् तद् व्यतिवर्तते॥
— वाक्यपदीय प्रकीर्ण कांड (श्लोक सं० ६१४)।
(ख) प्रकारवति चायं प्रत्ययः थाल्
पुनः प्रकारमात्रे एव भवति—काशिका (५।३।६९)

कहना चाहता कि यज्ञदत्त अन्य मनुष्यों से भिन्न है—भले ही वह अर्थ भी यहाँ सामर्थ्यगम्य रहा करता है।

'यथा' की इसी साक्षात् 'सादृश्य' वाचकता के कारण आलंकारिकों ने उपमावाचक शब्दों में 'यथा' को भी स्थान दिया है तथा 'यथा' से युक्त उपमा को 'श्रौती उपमा' का नाम दिया[1] है जिसका अभिप्राय है 'यथा' को सुनते ही तुरंत उपमा की प्रतीति हो जाती है। इसका उदाहरण है—'मुखमिन्दुर्यथा' जहाँ वाक्यगता श्रौती लुप्तोपमा मानी जाती है।

पर यदि 'यथा' को सादृश्यवाचक माना जाता है तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'अव्ययं विभक्ते'[2] इस सूत्र में 'यथा' पद से 'यथा' अर्थ में अव्ययीभाव समास का विधान कर देने पर फिर 'सादृश्य' अर्थ में उसी अव्ययीभाव समास का विधान करने के लिये पाणिनि ने उसी सूत्र में पुनः 'सादृश्य' पद को क्यों स्थान दिया?

इस प्रश्न का उत्तर भर्तृहरि ने दो तरह से दिया है। प्रथम उत्तर में भर्तृहरि का यह कहना है कि 'यथा' शब्द द्वारा उन शब्दों में अव्ययीभाव समास का विधान किया गया है जिनमें 'सादृश्य' धर्म प्रधानतया कहा जाता है।

जैसे 'हरेः सादृश्यम् सहरि' (हरि की सदृशता)। इसके विपरीत 'सादृश्य' पद द्वारा अव्ययीभाव समास का विधान उन पदों में किया जाता है जहाँ समास के द्वारा सादृश्यवान् कहा जाता है। जैसे 'सदृशः रामेण सरामः' या 'सदृशः सख्या ससखि' (राम के सदृश या सखा के सदृश)। यहाँ राम या सखा के सदृश कोई अन्य व्यक्ति कहा जा रहा[3] है।

दूसरा समाधान में भर्तृहरि ने यह कहा है कि 'यथा (अर्थ)' पद द्वारा उन स्थलों में समास अभिप्रेत है जहाँ गुणगत 'सादृश्य' की अभिव्यक्ति होती है। जैसे 'अनुरूपं वेष' (रूप के सदृश वेष)। यहाँ रूप गुण की सदृशता अभिहित

१. द्र० साहित्यदर्पण (१०।१६-२३)।

२. अष्टाध्यायी (२।१।६)।

३. सादृश्यग्रहणं सूत्रे सादृश्यस्योपलक्षणम्।
तुल्योरव्ययीभावे सहशब्दो अभिधायकः॥
वीप्सासादृश्ययोर्वृत्तिः या यथार्थाभिधायिनः।
स चायमव्ययीभावे भेदो भेदेन दर्शितः॥
—वाक्यपदीय वृत्ति समुद्देश (श्लोक सं० ६२०-२१)

हो रही है। इसके विपरीत 'सादृश्य' पद द्वारा उन स्थलों में अव्ययीभाव समास अभिप्रेत है जिनमें मूर्तिगत सादृश्य की अभिव्यक्ति होती है—जिसका संबंध वस्तु या व्यक्ति के अवयवों से होता है। इसका उदाहरण है—'सादृश्यं सख्या ससखि' (सखा का सादृश्य)। इस प्रकार के 'सादृश्य' को 'सह' अव्यय कहा जाता[1] है।

इन द्विविध स्थलों में अव्ययीभाव समास का विधान करने के लिये पाणिनि ने 'यथा' तथा 'सादृश्य' इन दोनों पदों को पृथक् पृथक् अपने उपर्युक्त सूत्र में स्थान दिया[2] है।

आश्चर्य की बात यह है कि भेदवादी जयादित्य ने भी, जो 'प्रकार वचने थाल्' सूत्र में 'प्रकार' शब्द का केवल 'भेद' अर्थ ही स्वीकार करता है, यहाँ 'यथा' को सादृश्यवाचक मानते हुए, भर्तृहरि के ही प्रथम समाधान को संक्षेप में थोड़े शब्दांतर के साथ प्रस्तुत किया है।

एक प्रश्न और पूछा जा सकता है कि यदि 'यथा' शब्द का अर्थ 'सादृश्य' ही है तो पाणिनि ने अपने सूत्र 'यथा असादृश्ये'[3]–द्वारा 'असादृश्य' अर्थ में 'यथा' अव्यय का समास-विधान क्यों किया? भर्तृहरि ने इस प्रश्न को नहीं उठाया है। पतंजलि ने, लगभग इसी प्रकार के एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में, यह कहा है कि केवल 'प्रकार वचने थाल्' से निष्पन्न होनेवाला व्युत्पन्न एवं थाल्-प्रत्ययांत—'यथा' शब्द ही 'सादृश्य' का वाचक है। इसके अतिरिक्त एक अव्युत्पन्न थाल् प्रतिरूपक थाल्प्रत्ययांत सदृश 'यथा' शब्द है जिसके 'सादृश्य' से इतर-योग्यता, वीप्सा तथा पदार्थानतिवृत्ति अर्थ होते हैं[4]। शाकटायन तथा हेम

१. सादृश्यं योग्यता कश्चिदनावभ्युपगम्येत।
यत्तु मूर्तिगतं साम्यं तत् सहेनाभिधीयते॥
—वाक्यपदीय, वही (श्लोक सं० ६२२)।

२. द्र० सादृश्यं तुल्यता। किमर्थम् इदम् उच्यते यथार्थ इत्येव सिद्धम्? गुणभूते अपि सादृश्ये यथा स्यात् सदृशः सख्या ससखि।
—काशिका (२।१।६)।

३. अष्टाध्यायी (२।१।७)

४. द्र० 'अथेत्ययं प्रकारवचने थाल् स च सादृश्ये वर्तते।······ अयं यथाशब्दो अस्त्येवाव्युत्पन्नः प्रातिपदिकं वीप्सावाचि। अस्ति प्रकारवचने थाल्। तत्र यद् अव्युत्पन्नं वीप्सावाचि तस्येदं ग्रहणम्॥
—महाभाष्य (२।१।७)

संप्रदाय के आचार्यों ने, पतंजलि के इस कथन के अनुसार ही, पाणिनि के 'यथा असादृश्ये' सूत्र के स्थान पर, 'यथा[1] अथा' सूत्र का प्रणयन किया है जिसका अभिप्राय है कि थाल्प्रत्यय-रहित अव्युत्पन्न 'यथा' का समर्थ सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है।

पर केवल अर्थ की भिन्नता की दृष्टि से एक ही 'यथा' शब्द को दो तरह का मान लेना किसी भी तरह सुसंगत नहीं प्रतीत होता।

ऊपर के प्रश्न का यह उत्तर दिया जा सकता है कि पाणिनि के 'असादृश्ये' पद का 'सादृश्य से सर्वथा रहित' यह अभिप्राय कदापि नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि वैयाकरणों की एक परिभाषा है-नञिवयुक्तम् अन्यसदृशाधिकरणे तथा हि अर्थगतिः[2] 'नञ' तथा 'इव' से युक्त पद में उससे भिन्न पर तत्सदृश द्रव्य या व्यक्ति का ज्ञान होता है')। इसीलिये 'अब्राह्मणमानय' कहने पर ब्राह्मणेतर पर ब्राह्मण सदृश ही किसी क्षत्रिय आदि को लाया जाता है। इसी तरह 'असादृश्ये' का भी अभिप्राय यह है कि 'यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः' में जिस प्रमुख 'सादृश्य' की अभिव्यक्ति पाई जाती है वैसी सदृशता से रहित पर सामान्य सादृश्य से युक्त अर्थ में 'यथा' इस अव्यय का समास अभीष्ट है। इसीलिये 'यथारूपम्' तथा 'यथाशक्ति' या 'यथावृद्धम्' जैसे समस्त पदों में जहाँ 'यथा असादृश्ये' सूत्र द्वारा समास का विधान किया जाता है तथा क्रमशः 'योग्यता' एवं पदार्थानतिवृत्ति' अर्थ अभिव्यक्त होते हैं, वहाँ भी 'सादृश्य' किसी न किसी रूप में रहता ही है।

इस तरह इस प्रथम सूत्र प्रकार वचने थाल् में 'प्रकार' शब्द का अर्थ प्रधानतः 'सादृश्य' ही प्रतीत होता है जिसकी अभिव्यक्ति के लिये 'थाल्' प्रत्यय का विधान पाणिनि ने किया है।

दूसरे सूत्र 'प्रकारवचने जातीयर्[3]' के 'पटुजातीयः', 'मृदुजातीयः' इत्यादि उदाहरणों में प्रायः गुणवाचक शब्दों से 'जातीयर्' प्रत्यय का संयोजन दिखाई देता है। इन सब उदाहरणों में 'सादृश्य' अर्थ की प्रधानता दिखाई देती है। 'पटुजातीयः' कहते हुए वक्ता की विवक्षा यही होती है कि 'वह पटुसदृश है, पटु-नहीं है'। भेदवादी विद्वान् यह अर्थ करेंगे कि 'वह पटु गुणयुक्त व्यक्तियों के वर्ग

१. हेमव्याकरण- (३।१।४१)
२. परिभाषेन्दु शेखर ( परिभाषा संख्या ७५ )
३. अष्टाध्यायी ( ५।३।६९ )

का है' इसलिये दूसरों से भिन्न है। परंतु पाणिनि को यहाँ 'वर्ग' या जाति को कहना अभीष्ट नहीं प्रतीत होता क्योंकि 'जाति' या 'वर्ग' को कहने के लिये पाणिनि का एक अन्य सूत्र है—'जात्यंतात्[1] छ बंधुनि' ( जात्यंत शब्दों से, बंधु बिरादरी या जातिवाले को कहने के लिये 'छ' प्रत्यय होता है ) जिसका उदाहरण है—'ब्राह्मण जातीयः', 'क्षत्रिय जातीयः' इत्यादि, जिसका अभिप्राय है—वह 'ब्राह्मण जाति का है', 'वह क्षत्रिय जाति का है'। इसलिये इस सूत्र के रहते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'प्रकारवचने जातीयर्' सूत्र में गुणवाचक शब्दों से ही सूत्रकार को 'जातीयर्' प्रत्यय अभीष्ट है।

यहाँ सादृश्य अर्थ की प्रबलता इसलिये भी स्वीकरणीय है कि 'प्रकारे गुणवचनस्य[2]' सूत्र से, जहाँ 'प्रकार' का अर्थ सभी विद्वान्, चाहे वे भेदवादी हों या सादृश्यवादी, 'सादृश्य' करते हैं। 'सादृश्य' की अभिव्यक्ति के लिये गुणवाचक शब्दों के द्वित्व प्रयोग के विकल्प में 'जातीयर्' प्रत्यय की स्थिति भी स्वीकार की जाती[3] है, अर्थात् पटु सदृश व्यक्ति को कहने के लिये ही 'पटुपटुः' तथा 'पटुजातीयः' इन दोनों में से किसी भी एक शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार इस दूसरे सूत्र में भी प्रकार का अर्थ 'सादृश्य' ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

तीसरे सूत्र 'स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने[4] कन्' से निष्पन्न होनेवाले 'चंचत्क' तथा 'बृहत्क' शब्दों के अर्थ के विषय में ऊपर भर्तृहरि तथा उनके अनुयायी कैय्यट के विचार दिए जा चुके हैं। उनके अनुसार इन शब्दों के अभिधेयभूत अर्थों की दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सूत्र में सादृश्य अर्थ में ही 'कन्' प्रत्यय का विधान माना जा सकता है और इसलिये यहाँ का 'प्रकार' शब्द भी सादृश्यवाचक ही है। इन दोनों शब्दों के अतिरिक्त 'स्थूलक', 'अणुक', 'माषक' इत्यादि शब्द भी अर्थ की दृष्टि से क्रमशः 'स्थूल', 'अणु' तथा 'माष' की समानता से युक्त होते हैं। स्थूल सदृश को 'स्थूलक', चतुर निपुण, अल्प, स्तोक को 'अणुक' तथा 'माष' से न्यून एक विशेष परिमाण को 'माषक' कहा जाता[5] है।

१. अष्टाध्यायी ( ५।४।६४ )
२. वही ( ८।१।१२ )
३. द्र० जातीयरो अनेन द्विर्वचनेन बाधनं नेष्यते।—काशिका ( ८।१।१२ )
४. अष्टाध्यायी ( ५।४।३ )
५. द्र० शब्दकल्पद्रुम
 १० ( ६६–३ )

पदमंजरी के लेखक हरदत्त मिश्र ने स्थूलादिगण के कुछ अन्य उदाहरणों का भी अर्थ प्रस्तुत किया है; जैसे 'यवकः' का अर्थ 'यवसदृश' 'गोमूत्रक' का गोमूत्र सदृश झालरवाला वस्त्र या आच्छादन विशेष, 'सुरक' का सुरा वर्णवाला सर्प, 'जीर्णक' का लगभग जीर्ण हो गए धान, इत्यादि[1]। इन शब्दों के ये अर्थ, जिनकी पुष्टि कोशकार भी करते हैं, इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्रस्तुत सूत्र में 'प्रकार' शब्द का अर्थ 'सादृश्य' ही है।

चौथे सूत्र 'प्रकारे गुणवचनस्य'[2] के विषय में विशेष कहने की आवश्यकता इसलिये नहीं है कि यहाँ तो उपरिनिर्दिष्ट भेदवादी विद्वान् भी 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य ही करते हैं। काशिका में इस सूत्र की व्याख्या भले ही भेदवादी जयादित्य के द्वारा नहीं की गई है अपितु सादृश्यवादी वामन के द्वारा की गई है, पर जैनेंद्र आदि तो भेदवादी ही हैं परंतु उन्हें भी यहाँ सादृश्य अर्थ ही[3] अभिप्रेत है।

इस तरह इन सूत्रों के विभिन्न उदाहरणों तथा उनके अर्थों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रकार', शब्द का प्रयोग पाणिनि के इन सूत्रों में 'सादृश्य' अर्थ में ही हुआ है और इस रूप में भर्तृहरि आदि सादृश्यवादी विद्वानों की स्थिति ही अधिक सुदृढ़ एवं मान्य प्रतीत होती है।

परंतु भर्तृहरि का 'सर्वत्र' शब्द यह बताता है कि भर्तृहरि न केवल इन चार सूत्रों में 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य मानते हैं अपितु जहाँ कहीं भी 'प्रकार' शब्द का प्रयोग किया जाता है वहाँ सर्वत्र ही उसका 'सादृश्य' अर्थ ही मानना चाहिए। पाणिनि के दो अन्य सूत्रों—'इत्थम्भूत लक्षणे'[4] तथा 'संख्याया विधार्थे[5] धा' में भी 'प्रकार' शब्द अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। पहले सूत्र का अर्थ है 'किसी विशेष प्रकारता की प्राप्ति के लक्षण या चिह्न के वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है'; जैसे 'जटाभिः तापसः' या कमण्डलुना छात्रः'। यहाँ

१. द्र० पदमंजरी (५।४।३)
२. अष्टाध्यायी (८।१।१२)
३. द्र० प्रकारो गुणोक्तेः—प्रकारः सादृश्यमिह गृह्यते।—जैनेंद्र व्याकरण महावृत्ति (५।२।१०)
४. अष्टाध्यायी (२।३।२१)
५. वही (५।४।६)

'तापसत्व' या 'छात्रत्व' रूप विशिष्ट प्रकार के क्रमशः लक्षण हैं जटा तथा कमंडलु जिनसे तृतीया विभक्ति दिखाई देती है। दूसरे सूत्र का अर्थ संख्यावाचक शब्दों से क्रिया 'प्रकार' को कहने के लिये 'धा' प्रत्यय संयुक्त होता है; जैसे 'रामः पंचधा भुंक्ते' ( राम पाँच तरह से भोजन करता है )।

स्पष्ट है कि इन दोनों स्थलों में 'प्रकार' का अर्थभेद है परंतु भर्तृहरि यहाँ भी बुद्धिस्थ 'सादृश्य' मानते[1] हैं। इन प्रयोगों में 'भेद प्रतीति के ज्ञापक जटा तथा कमंडलु इत्यादि वस्तुएँ बाह्य तथा क्षणिक हैं, इसलिये उनके आधार पर जो भेदज्ञान होगा वह भी अवास्तविक ही होगा। इसी तरह 'पंचधा भुंक्ते' इत्यादि में 'प्रकारता' या 'भेद' केवल साधनों में ही हो सकता है, न कि क्रिया में; क्योंकि क्रिया तो सर्वथा भेदरहित हुआ करती है। इसलिये प्रकार का सर्वत्र 'सादृश्य' अर्थ ही मानना चाहिए, यह भर्तृहरि का अभिमत सिद्धांत है।

*

१. इत्थम्भावेऽपि सादृश्यं तु व्यवस्थानिबन्धनम्।
प्रहणे भेदमात्रस्य तत्रान्यैवाभिधीयते॥
—वाक्यपदीय प्रकीर्ण कांड ( श्लोक सं० ६१३ )

# बंबई का पारसी रंगमंच

डॉ० रणधीर उपाध्याय

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् भारतीय रंगमंच का आधुनिक रूप शुरू होता है। भारत में अर्वाचीन ढंग के रंगमंच का सर्वप्रथम प्रारंभ कलकत्ता में हुआ। सन् १७५७ ई० के प्लासीयुद्ध के समय कलकत्ता में आज के मिशन रो के पूर्वोत्तर भाग में लाल बाजार में अंग्रेजों का 'प्लेहाउस' नामक एक नाट्यगृह था[1] जहाँ अंग्रेजों के द्वारा अंग्रेजी नाटक खेले जाते थे। युद्ध में उसका ध्वंस होने पर सन् १७७५ ई० में पुनः उसका निर्माण हुआ। कलकत्ता के अंग्रेजी रंगमंच की यह परंपरा १९वीं शती तक चलती रही। इससे प्रेरित और प्रभावित होकर हेरेसिम लेबेडेफ नामक रूसी यात्री ने सन् १७९५ ई० में कलकत्ता के मध्यभाग में एक नाट्यगृह स्थापित किया और बाबू गोलोकनाथ नामक बंगाली भाषाविद् की सहायता से 'छद्मवेश' नामक बँगला नाटक सर्वप्रथम दिनांक २७ नवंबर, १७९५ को खेला।[2] इसमें बंगाली पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी भाग लिया।[3] तत्पश्चात् कई नाट्यगृह और नाटक मंडलियाँ क्रमशः बनीं और टूटीं। पर बंगाली नाट्याभिनय की यह परंपरा लेबेडेफ के अनंतर आज तक अक्षुण्णरूपेण जारी रही है। समस्त भारत में बंगाली रंगमंच सर्वप्रथम प्रारंभ हुआ और उसका चरमोत्कर्ष भी हुआ।

पारसी रंगमंच का उद्भव और विकास बंगाली रंगमंच के अनंतर हुआ है। इस पारसी रंगमंच का संबंध भारतीय संस्कृत रंगमंच से न होकर पाश्चात्य रंगमंच से रहा है। पारसी रंगमंच वस्तुतः गुजराती रंगमंच है, जिसका जन्म बंबई में गुजरातीभाषी पारसी सज्जनों के प्रयत्नों से हुआ है। इसी

१. द इंडियन स्टेज, भाग १, हेमेंद्रनाथ दासगुप्त, संस्करण १९३४, पृ० १७६।
२. वही, पृ० २२०
३. वही, पृ० २२०